स्वामी विवेकानंद और राष्ट्रवाद–एक समीक्षा

ओमप्रकाश कुमार*

शोध सरांश :–तत्कालीन युग की सबसे बड़ी माँग राष्ट्रवाद थी, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने अपनी ओजस्वी वाणी में व्यक्त किया। यह "राष्ट्रवाद कोई अमूर्त और संकीर्ण अवधारणा नहीं है। वह विश्व–बन्धुत्व से ओत–प्रोत है,जिसके मूल से भारत की सनातनता एवं सन्तानों का हित निहित हैं। इसीलिए कन्या कुमारी में अपनी समाधि से उठकर स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि "मैंने देखा है कि भारत माता ओर जगदम्बा में कोई भेद नहीं हैं। भारत माता की पूजा ही जगदम्बा की पूजा है। भारतमाता की सेवा का अर्थ है, भारत की सन्तान की सेवा।" शिकागो की धर्म संसद में अपने विश्व–विख्यात व्याख्यान के पश्चात प्रसिद्धि के शिखर पर अवस्थिति स्वामी विवेकानंद का मन मर्मान्तक पीड़ा से भर उठता है– "ओह माँ! नाम और प्रसिद्धि लेकर मैं क्या करूंगा, जब मेरी मातृभूमि अत्यन्त गरीब हैं। कौन भारत के गरीबों को उठायेगा? कौन उन्हें रोटी देगा? हे माँ मुझे रास्ता दिखाओं, मैं कैसे अनकी सहायता करूँ? इस प्रकार आपका राष्ट्रवाद आमजन का अपना राष्ट्रवाद है जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व पर आधारित है। स्वामी विवेकानन्द स्वतन्त्रता के प्रबल पक्षधर है। आपके अनुसार "स्वाधीनता ही विकास की पहली शर्त है।" लन्दन के एक व्याख्यान में आपने कहा था, "यह विश्व क्या है? स्वतन्त्रता में इसका उदय होता है और स्वतन्त्रता पर ही यह अवलम्बित है।" यह बात उन्होंने सिंह की मांद में घुसकर ललकार के स्वर में कही थी क्योंकि ब्रिटेन उस समय सबसे बड़ा साम्राज्यवादी देश था। आपने "चार जुलाई" शीर्षक कविता में स्वतंत्रता को पूरी दुनिया में छा जाने की मूर्त कल्पना की है। एक जीवन–मूल्य के रूप में स्वतन्त्रता की तभी सार्थकता है जब वह सामाजिक समानता पर आधारित हो।

कूंजीः– स्वामी विवेकानंद समानता, स्वतंत्रता, राष्ट्र, विचार,

परिचय :– राष्ट्रवाद पर विवेकानंद के विचार भौगोलिक या राजनीतिक या भावनात्मक एकता पर आधारित नहीं हैं, न ही इस भावना पर कि "हम भारतीय है। राष्ट्रवाद पर उनके अनुसार यह लोगों का आध्यात्मिक एकीकरण, आत्मा की आध्यात्मिक जागृति है। उन्होंने प्रचलित विविधता को विभिन्न आधारों पर पहचाना और सुझाव दिया कि भारतीय राष्ट्रवाद पश्चिम की तरह पृथकतावादी नहीं हो सकता हैं। उनके अनुसार भारतीय लोग गहन धार्मिक प्रकृति के है और इससे एकजुट होने की शक्ति प्राप्त की जा सकती हैं। राष्ट्रीय आदर्शों के विकास से उद्देश्य और कार्यवाही में एकता प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने करूणा, सेवा और त्याग को राष्ट्रीय आदर्शों के रूप में मान्यता दी। इसलिए विवेकानंद के लिए राष्ट्रवाद सार्वभौमिकता और मानवता पर आधारित है। उनका मानना था कि प्रत्येक देश में एक ऐसा प्रभावी सिद्धांत होता जो उस देश के जीवन में समग्र रूप से परिलक्षित होता है और भारत के लिए धर्म था। धर्मनिरपेक्षता पर आधारिता पश्चिमी राष्ट्रवाद के विपरीत स्वामी विवेकानंद के राष्ट्रवाद का आधार धर्म, भारतीय आध्यात्मिकता और नैतिकता थी। भारत में आध्यात्मिकता को सभी धार्मिक शक्तियों के संगम के रूप में देखा जाता हैं।

राष्ट्रवाद किसी देश के प्रति निष्ठा या राष्ट्रीय चेतना की भावना के रूप में परिभाषित किया जाता है। उस देश को अन्य देशों से ऊपर रखता हैं। यह मुख्य रू‍ से अन्य देशों या अंतरराष्ट्रीय समूहों की तुलना में अपनी राष्ट्रीय संस्कृति और हितों का बढ़ावा देने पर बल देता है। राष्ट्रवाद पर विवेकानंद के विचार भौगोलिक या राजनीतिक या भावनात्मक एकता पर आधारित नहीं है, न ही इस भावना पर कि "हम भारतीय है। राष्ट्रवाद पर उनके विचार गहन आध्यात्मिक है। उनके अनुसार यह लोगों का आध्यात्मिक एकीकरण, आत्मा की आध्यात्मिक जागृति है। उन्होंने प्रचलित विविधता को विभिन्न आधारों पर पहचाना और सुझााव दिया कि भारतीय राष्ट्रवाद पश्चिम की तरह पृथकतावादी नहीं हो सकता हैं। उनके अनुसार भारतीय लोग गहन धार्मिक प्रकृति के है और इससे एकजुट होने की शक्ति प्राप्त की जा सकती है। राष्ट्रीय आदर्शों के विकास से उद्देश्य और कार्यवाही मं एकता प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने करूणा, सेवा और त्याग को राष्ट्रीय आदर्शों के रूप में मान्यता दी। इसलिए विवेकानंद के लिए राष्ट्रवाद सार्वभौमिकता और मानवता पर आधारित है।

उनका मानना था कि प्रत्येक देश में एक ऐसा प्रभावी सिद्धांत होता जो उस देश के जीवन में समग्र रूप से परिलक्षित होता है और भारत के लिए यह ध र्म था। धर्मनिरपेक्षता पर आधारित पश्चिमी राष्ट्रवाद के विपरीत स्वामी विवेकानंद के राष्ट्रवाद के आधार धर्म, भारतीय आध्यात्मिकता और नैतिकता थी। भारत में आध्यात्मिकता को सभी धार्मिक शक्तियों को राष्ट्रीय में आध्यात्मिकता को सभी ध ार्मिक शक्तियों के संगम के रूप में देखा जाता है। यह माना जाता है कि यह इन सभी शक्तियों को राष्ट्रीय प्रवाह में एकजुट करने में सक्षमह ै। उन्होंने मानवतावाद और सार्वभौमिकता के आदर्शों ने लोगों का स्व–प्रेरित बंधनों और उनके परिणामी दुखों से मुक्त होने हेतु पथप्रदर्शन किया है।

***स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग शिवाजी महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

12 जनवरी 1863 को कलकत्ता में नरेन्द्रनाथ का जन्म होना फिर स्वामी रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आकर बालक नरेंद्र का स्वामी विवेकानंद बन जाना एक अलग कहानी है। उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है शिकागो विश्व धर्मसंसद में धर्म और राष्ट्रवाद पर दिया। उनका भाषण 1893 को शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद में स्वामी विवेकानंद द्वारा अपने विश्व प्रसिद्ध भाषण में भारत में राष्ट्रवाद की जिस चेतना को जागृत किया था वह चेतना गुलाम भारत में उस राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए अति आवश्यक थी, जिस राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता अपने समग्र संसाधनों और पूर्ण एकजुटता से 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अग्रेजों के विरुद्ध लड़कर पराजित हो चुकी थी।

भारत के मूल निवासी जिन्हें हम आदिवासी और वनवासी के नाम से जानते है वह 19 वीं सदी के प्रारंभ से ही जंगलों के अवैज्ञानिक दोहन और जंगलों में आदिवासियों के परंपरागत अधिकारों से उन्हे वंचित करने के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध पहले ही कई बार विद्रोह का बिगुल बजा चुके थे। इन आदिवासियों में प्रमुख कोल, संथाल, भील आदि जातियों ने अलग–अलग स्थानों और समय में अंग्रेजो के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया. इन सभी विद्रोहों को अंग्रेजों ने भीषण दमन के बाद कुल दिया. परिणामस्वरूप एक राष्ट्र के रूप में भारत की चेतना तब इतनी कुंद हो चुकी थी, मनोबल इतना गिर चुका था कि उन्हे इस बात का यकी नही नहीं था कि भारत अंतरराष्ट्रीय मंच पर एक राष्ट्र के रूप में कभी स्वीकार भी किया जा सकता है।

ऐसी घनघोर हताशा और निराशा के बीच विश्व धर्म संसद में अपनी आध्यात्मिक शक्ति से दुनिया को नई राह दिखाने का जो वक्तव्य विवेकानंद ने शिकागो की धर्म ससंद में किया उससे समस्त भारत में एक नई चेतना और एक नए आत्मविश्वास का संचार हुआ। उस धर्म संसद में भारत की शक्ति का स्त्रोत उसकी धार्मिक सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति को बताया। विवेकानंद ने कहा "मुझे गर्व है कि मै उस धर्म से हूं जिसने दुनिया को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति का पाढ पढ़ाया हम सिर्फ सार्वभौमिक सहिष्णुता पर ही विश्वास नहीं करते बल्कि हम सभी धर्मों को सच के रूप में स्वीकार करते है। मुझे गर्व है कि मैं उस देश से हूं जिसने सभी धर्मों और सभी देशों से सताए गए लोगों को अपने यहां शरण दी। मुझे गर्व है कि आपने दिल में हमने इजराय की यह पवित्र यादें संजो कर रखी है जो हमलावरों ने नष्ट कर दी।

गीता के श्लोक को उद्धत कर विवेकानंद कहे थे– "जो भी मुझ तक आता है चाहे कैसा भी हो मैं उस तक पहुंचता हूँ, लोग अलग–अलग रास्ते चुनते हैं परेशानियां झेलते हैं, लेकिन आखिर में मुझ तक पहुंचते है। अर्थात सभी धर्मों की

शिक्षाएं, सभी धर्मों के रास्ते भले ही अलग–अलग है लेकिन सब धर्मों का मूल वह एक सर्वशक्तिमान ही है, जो मानवता में ही प्रतिबिंबित होता है, अर्थात मनुष्यता का कल्याण ही सभी धर्मों का मूल हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार का समर्थन करते थे, लेकिन आप साम्यवादी चिन्तन की "पूर्ण समानता" की मान्यता को असंभव मानते है। आपके शब्दों में "सच्ची समानता न तो कभी रही है और न ही इस पृथ्वी पर कभी स्थापित हो सकती है। हम सभी लोग यहाँ एक समान केसे हो सकते है? इस असंभव समानता का अर्थ है–पूर्ण मृत्यु ।" अब प्रश्न है कि मनुष्य–मनुष्य में अन्तर क्यों है ? एक पागल व्यक्ति ही यह कह सकता है कि हम सभी समान मानसिक व्यक्ति के साथ जन्म लेते है।"

स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि "स्वतन्त्रता ही विकास की एकमात्र शर्त है।"

इसको समाप्त करने का परिणाम होगा–अधःपतन। स्वतन्त्रता व्यक्ति की आत्मानुभूति के लिए आवश्यक है। अपने 'स्व' का साक्षात्कार करना ही पूर्णता है। चूँकि समाज का निर्माण व्यक्तियों के सम्मिलन से ही होता है। अतः जो तत्व व्यक्ति के विकास व पूर्णता के लिए भी फलप्राप्त होगा। इसलिए आप प्रत्येक व्यक्ति के लिए आह्वान करते हैं कि –'स्वतन्त्र' बनो। एक स्वाधीन शरीर, एक स्वाधीन मस्तिष्क और एक स्वाधीन आत्मा। यही वह वस्तु हैं जिसका अनुभव मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन में किया है। अधीनता में भलाई करने की अपेक्षा मैं स्वाधीनतापूर्वक बुराई करना अधिक श्रेयस्कर समझूँगा।"

कोई भी व्यक्ति, जाति या राष्ट्र केवल उस स्थिति में ही उन्नति कर सकता है जब व्यक्तियों को दो प्रकार की स्वतन्त्रताएँ प्रदान की जाएँ–विचार की स्वतन्त्रता, कार्य की स्वतन्त्रता। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, "विचार व कार्य की स्वतन्त्रता ही जीवन विकास व खुशहाली की एकमात्र शर्त है। जहाँ इसका अस्तित्व नहीं है, वहाँ व्यक्ति, प्रजाति और राष्ट्र का आवश्यक रूप से पतन होगा।" एक राष्ट्रवादी अपने राष्ट्र की शक्ति क्षेत्र व प्रभाव का विस्तार करना चाहता है। स्वामी विवेकानन्द भी कहना था कि "विस्तार जीवन का लक्षण है हमे बाहर जाना होगा, विस्तार करना होगा,अपने जीवन को प्रदर्शित करना होगा, अथवा नीचे गिरना होगा, सड़ना होगा और मर जाना होगा। भारत को विश्व विजय करना होगा.....। यही हमारी शाश्वत विदेश नीति होनी चाहिए।" लेकिन यह विस्तार आर्थिक या राजनीतिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक कोष की प्रतीक्षा कर रहा है.....। हमें दुनिया के विभिन्न राष्ट्रों को अपने 'शास्त्रों' के सत्य का उपदेश देना है। भारत पश्चिम को अपनी आध्यात्मिक शक्ति से पराभूत करेगा, धर्म की विजय करेगा।

सर्वकल्याण में आस्था रखने के कारण स्वामी विवेकानन्द व्यक्तिवादी नैतिकता के दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हैं। आप व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक है लेकिन वास्तविक स्वतंत्रता, स्वंय के स्वार्थों की पूर्ति में नही बल्कि दूसरों के हित के लिए अपने निजी हितों के परित्याग में अन्तर्निहित होती है। नैतिकता का कहना है कि मैं नहीं, बल्कि तुम।' इसका आदर्श वाक्य है– 'स्व' नहीं, बल्कि स्व–हीनता। इसलिए नैतिकता के नियमों के अनुसार व्यक्तिवाद के उन निरर्थक विचारों को छोड़ना आवश्यक हैं जिनसे व्यक्ति उस समय चिपक जाता है जब वह अन्तहीन शक्ति अथवा अनन्त ऐन्द्रिय सुख की प्राप्ति का प्रयत्न करता हैं। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि इन्द्रियाँ कहती है–सर्वप्रथम मैं। नैतिकता कहती है– मुझे स्वयं को सबसे अन्त में रखना चाहिए।" सच्ची नैतिकता भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति की अवधारणा का विरोध करती है।

स्वंय स्वामी विवेकानन्द के हृदय में अपने राष्ट्र के प्रति कितना लगाव था, यह उस कथन से प्रमाणित होता है जो आपने दिसम्बर, सन् 1869ई0 को लंदन छोड़ते वक्त कहा था। आपके शब्दों में, "पाश्चात्य–भूमि में आने से पूर्व में भारत से सिर्फ प्यार करता था, इस समय भारत का धूलिकण तक मेरे लिए पवित्र है, भारत की वायु अब मेरी दृष्टि में पवित्रता की प्रतिमूर्ति है– भारत इस समय मेरे लिए तीर्थ जैसा है।" आपने भारत–भूमि को 'पुण्य–भूमि' ही नहीं कहा अपितु उसे भारत माता की संज्ञा प्रदान की। आप चाहते हैं कि सब कुछ भूलकर सभी व्यक्ति देश के पुनरुत्थान के प्रति समर्पित हो जाएँ। आपके अनुसार आगामी पचास वर्षों तक हमारी महान् 'भारत माता' ही हमारा प्रधान राग हो। अन्य समस्त व्यर्थ के देवताओं को अपने मस्तिष्क से अदृश्य हो जाने दो, हमारा भारत, हमारा राष्ट्र केवल यही एक देवता है जो जाग रहा है.... जो सबमें व्याप्त है।..... सर्वप्रथम 'विराट' की पूजा करो, उसे विराट की जो हमारे चारों तरफ है– सभी मनुष्यों एवं जीवों की पूजा....। इन शब्दों में अपार राष्ट्र भक्ति, अनन्त देश–भक्ति को स्पष्टतः अनुभव किया जा सकता है।

धार्मिक या आध्यात्मिक राष्ट्रवाद को राष्ट्र की शक्ति का मुख्य साधन घोषित करते हुए उसके लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु स्वामी विवेकानन्द ने युवकों का आह्वान करते हुए कहा कि "आज हमारे देश को जिन चीजों की आवश्यकता है वे है– लोहे की मांश पेशियां, स्पात की तंत्रिकाएं, प्रखर संकल्प जिसका कोई प्रतिरोध न हो सके, जो अपना काम हर प्रकार से पूरा कर सके चाहे मृत्यु से साक्षात्कार ही कयों नह करना पड़े, यह है हमें जिसकी आवश्यकता है और हम तभी श्रजन कर सकते हैं, तभी सामना कर सकते हैं और तभी शक्तिशाली बन सकते है। जबकि हम धार्मिक एकता के आर्दश की अनुभूति कर लें।" इस प्रकार

राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक या धार्मिक सिद्धांत को स्वामी विवेकानन्द के राजनीतिक चिन्तन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द राज्य के निर्माण में समानता के सिद्धान्त पर बल देते है। आपके अनुसार आदर्श राज्य वही होगा जिसमें सभी वर्ग समान हों। अपनी इसी विचारधारा के कारण विवेकानंद समाजवादी कहलाये। आपने देश के सभी निवासियों के लिए 'समान अवसर के सिद्धान्त का समर्थन किया। आपने लिखा कि "यदि प्रकृति में असमानता है तो भी सबके लिए समान अवसर होना चाहिए अथवा यदि कुछ को अधिक तथा कुछ को कम अवसर दिया जाये तो दुर्बलों को सबलों से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए।"

संदर्भ ग्रथ सूची

1. जैन, प्रदीप कुमार, विद्यामेद्य, विद्या प्रकाशन मन्दिर लि0, प्रेस यूनिट, टी0 पी0 नगर, मेरठ, 2009
2. झा, राकेश कुमार, योजना, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, जनवरी 2010, जनवरी 2013
3. स्वामी विवेकानंद का शिकागों में धर्म सम्मेलन भाषण, 11 सितम्बर 1893
4. शर्मा डॉ0 योगेंद्र, भारतीय राजनीतिक चिंतन, डॉ0 सी0 एल0 बघेल, अलका प्रकाशन, कानपुर 2005
5. सिंह, डॉ0 ओ0 पी0, शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012
6. सिंह, डॉ0 कर्ण, विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षा, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर–खीरी,2011–12

****